# सीआरबी सचिव कामरेड आनंद से महाराष्ट्र राज्य कमेटी का मुखपत्र 'पहाट' का साक्षात्कार

**प्रश्न 1 –** सारी दुनिया आर्थिक संकट में फंस गई है। मनमोहनसिंह यह कह रहा है कि भारत पर इसका कोई असर नहीं है और यह दुनिया की तीसरी बड़ी आर्थिक शक्ति के रूप में उभरने वाला है। इस पर आपकी टिप्पणी क्या है?

**का. आनंद –** मनमोहन सिंह का यह कहना कि वैश्विक आर्थिक संकट का प्रभाव भारत पर नहीं है, पूरी तरह झूठ है। जनता को भ्रम में डाले रखने की कोशिश है यह। देश की आर्थिक हालत पर नजर डाली जाए तो समझ में आएगा कि संकट का प्रभाव कितना है। सरकार यह कहते हुए ही कि देश के विकास के लिए कृषि क्षेत्र अहम है, औद्योगिक क्षेत्र को ज्यादा महत्व दे रही है। इस क्षेत्र में भी 2011 के प्रारम्भ से उत्पादन में गिरावट देखी जा सकती है। कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों की तुलना में सेवा क्षेत्र को ज्यादा तवज्जो देते हुए उसी को औद्योगिक विकास के रूप में दिखाने की चेष्टा कर रही है। इससे साम्राज्यवाद को ही फायदा होगा, देश के विकास और टिकाऊ राष्ट्रीय आय के लिए उपयोगी कतई नहीं होगा। फिलहाल आर्थिक संकट के प्रभाव से इस क्षेत्र में भी काफी उतार–चढ़ाव है जिससे देश की आर्थिक हालत में उल्लेखनीय गिरावट देखी जा रही है। इन तीनों क्षेत्रों में भी 2011 की पहली तिमाही में आई गिरावट को लेकर खुद प्रणब मुखर्जी ने खुलेआम चिंता व्यक्त की।

2008 में उत्पन्न वैश्विक आर्थिक संकट के समय शुरू में औद्योगिक क्षेत्र से निर्यात कम हुए थे, पर बाद में बढ़ गए। लेकिन यूरोप के हाल के संकट के चलते उन देशों में जाने वाले निर्यात कम हो गए जिससे औद्योगिक उत्पादन में उल्लेखनीय गिरावट आई। आर्थिक विशेषज्ञों का मानना है कि आगे–आगे निर्यात और भी कम हो जाएंगे। कृषि क्षेत्र संकट में फंसकर छटपटा रहा है। उत्पादन बढ़ने के बावजूद खाद्य मुद्रास्फीति दोहरे अंकों में पहुंच गई। किसानों की लागत बढ़ने से और समर्थन मूल्य के अभाव में आंध्रप्रदेश में लाखों एकड़ जमीन में 'फसल विराम' घोषित कर दिया गया। यानी इसे किसानों की हड़ताल के रूप में बताया जा सकता है। इससे कृषि उत्पादन और भी घटकर खाद्य मुद्रास्फीति और बढ़ जाएगी। इसके बावजूद सरकार के कान में जूं तक नहीं रेंग

रही है। देश की सम्पदाओं को लूटकर ले जा रही कार्पोरेट संस्थाओं की कृषि क्षेत्र में घुसपैठ के लिए सरकार सारे दरवाजे खोल रही है। इससे किसान अपने ही खेतों में मजदूर बन जाएंगे। कृषि क्षेत्र के प्रति सरकार घोर उपेक्षा बरत रही है। इससे देश की आर्थिक हालत और ज्यादा बिगड़ जाएगी। जब उत्पादकता और सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में योगदान करने वाले क्षेत्र इस तरह कमजोर पड़ रहे हों और अस्थिर योगदान करने वाले सेवा क्षेत्र का प्रतिशत बढ़ रहा हो, देश की आर्थिक स्थिति कैसे सुधरेगी?

मुद्रास्फीति में किसी भी तरह की गिरावट न होते देख रिजर्व बैंक ने तेराह बार ब्याज दरों में बढ़ोतरी की। अब फिर बढ़ाने के लिए तैयार है। रिजर्व बैंक की सालाना रिपोर्ट ने सरकार को यह चेतावनी दी कि वित्तीय वर्ष 2011–12 में कठिन परिस्थिति से जूझना पड़ सकता है। अतः सकल घरेलू उत्पाद में 7 प्रतिशत बढ़ोत्तरी शायद ही संभव होगी। जहां एक ओर जी.डी.पी. में 7 प्रतिशत बढ़ोत्तरी भी नहीं हो पा रही हो, वहीं प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह का यह कहना कि 2025 तक भारत विश्व की तीसरी सबसे बड़ी शक्ति के रूप में उभरेगा, ख्याली पुलाव पकाने के अलावा कुछ नहीं है। जो शासक तीन सालों से मुद्रास्फीति और महंगाई पर काबू नहीं कर पा रहे हैं, उनकी बातों पर जनता कैसे यकीन करेगी? अमेरिका के आर्थिक संकट ने यूरोपियाई देशों को घेर लिया। भूमण्डलीकरण के चलते हमारा देश भी धीमी गति में आ गई है। शेयर बाजार में आई गिरावट से जहां विदेशी पूंजीपतियों ने बड़े पैमाने पर पूंजी वापस ली, वहीं देश के छोटे निवेशकों को करीब चार लाख करोड़ रुपए का घाटा झेलना पड़ा। वित्त मंत्री ने खुद ही माना कि भूमण्डलीकरण के दुष्चक्र में फंसने वाला कोई भी देश उससे बच नहीं पाएगा। दूसरी ओर वह यह भी कहता है कि हमें चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि हमारे फण्डमेंटल्स (बुनियादी तत्व) मजबूत हैं। ऐसे दोगले शासक अगर यह कहते हैं कि देश आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहा है, तो उस पर विश्वास कौन करे?

औद्योगिक क्षेत्र में हमारे देश से होने वाले निर्यात 6 प्रतिशत हैं जबकि आयात 19 प्रतिशत हैं। औद्योगिक क्षेत्र का घाटा 13 प्रतिशत है। व्यापार के क्षेत्र में घाटा 133 लाख करोड़ रुपए हैं, जोकि आने वाले दिनों में 300 लाख करोड़ रुपए तक बढ़ सकता है। औद्योगिक व्यापार के घाटे को पाटने के लिए हमारे देश में पर्याप्त विदेशी मुद्रा नहीं है। सिर्फ 20 लाख करोड़ डालर भर हैं। इसलिए अनिवार्य रूप से हमारी अर्थव्यवस्था अल्पकालिक विदेशी पूंजी (एफ.आई.आई.)

पर निर्भर करेगी। हालांकि फिलहाल वैश्विक संकट के चलते यह पूंजी आ नहीं रही है। इससे डालर के मुकाबले रुपए का मूल्य रोज–रोज गिरते हुए 50 रुपए से ऊपर चला गया। देश में मुद्रास्फीति की दर 7.47 प्रतिशत है जोकि खतरनाक स्तर है। देश में औद्योगिक व व्यापार क्षेत्र, शेयर बाजार सहित सभी क्षेत्रों में बेहद अनिश्चितता कायम है। ऐसी स्थिति में रिजर्व बैंक अपनी मौद्रिक नीति के तहत ब्याज की दरों को घटा दे या अन्य कोई उदार नीति अपनाए, इसका कोई आसार दिखाई नहीं दे रहा है। सच्चाई यह है कि वैश्वीकरण को सिर माथे पर उठाए हुए शासक देश को संकट की दलदल में फंसा देंगे।

दूसरी तरफ सार्वजनिक संस्थाओं में शेयरों को बेच डालने की प्रक्रिया शुरू कर दी गई। इससे 40 हजार करोड़ रुपए की आय जुटाने का लक्ष्य रखा गया है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि इस आय को उत्पादन में ही लगा दे। अगर कोई अपने घर को बिक्री पर लगा देता है उसका सीधा मतलब यही है कि उसका दिवालिया निकल गया। जनता के पैसों से निर्मित उद्योगों के शेयर बिक्री पर लगाने के कदम से साफ पता चल जाता है कि सरकार की आर्थिक हालत कितनी संकट में है। मौजूदा मंदी के हालात में उद्योगपति भी इन शेयरों को खरीदने में दिलचस्पी नहीं दिखा रहे हैं। अगर वैश्विक संकट का असर नहीं था तो बड़े पूंजीपतियों को बचाने के लिए बेल–आउट योजनाओं के तहत सरकार ने तीन लाख रुपए खर्च क्यों किए? जबकि देश में बढ़ती जा रही मुद्रास्फीति तथा महंगाई को काबू करने के लिए उसने कोई कदम नहीं उठाया।

जी.डी.पी. में बढ़ोत्तरी का मतलब उत्पादन का बढ़ना। उत्पादन बढ़ने से रोजगार भी बढ़ना चाहिए। लेकिन सरकारी आंकड़ों के मुताबिक 1999–2005 के बीच ग्रामीण इलाकों में रोजगार के अवसरों में 2.2 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई थी, जबकि 2009–10 के मध्य यह बढ़ोत्तरी 0.42 प्रतिशत ही रही। साम्राज्यवादी आर्थिक सुधार शुरू होने के बाद इन दो दशकों में देश में रोजगार के अवसरों में काफी गिरावट आई। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में नौकरियों से हटाने का सिलसिला चल पड़ा, जबकि ठेके पर मजदूरों व कर्मचारियों की नियुक्ति बढ़ी। कई उद्योग बंद पड़ गए या उनका निजीकरण हुआ। अनुत्पादक क्षेत्र में, जैसे कि फौज व पुलिस की नौकरियों में तथा रक्षा क्षेत्र में खर्च बढ़ गया। विदेशी पूंजी को बुनियादी ढांचे के निर्माण में, यानी प्रधानमंत्री सड़क योजना, छह लेन की सड़कों का निर्माण, एक्सप्रेस हाइवे, परमाणु बिजली संयंत्र (कूडनकुलम में रूस के साथ समझौता) आदि पर खर्च किया जा रहा है।

यह सब आर्थिक संकट नहीं तो फिर क्या है? इस संकट में कार्पोरेट पूंजी ने और ज्यादा मुनाफा कमा लिया, जबकि शोषक सरकारों ने संकट का बोझ पूरा जनता पर थोप दिया जिससे उनके हालात बद से बदतर हो गए। दूसरी ओर साम्राज्यवाद ने खुद को संकट से उबरने के लिए सस्ता श्रम, कच्चा माल और उद्योगों की स्थापना के लिए आवश्यक जमीनों के लिए भारत पर नजरें डालीं। यहां के शासक वर्ग उसके हां में हां मिलाकर चल रहे हैं। देश में खदानों, सेज और भारी उद्योगों के नाम से जनता को बड़े पैमाने पर विस्थापित किया जा रहा है। यह सिलसिला रोज–रोज बढ़ता जा रहा है। अब यह खुदरा व्यापार के क्षेत्र में तथा बीमा आदि लाभदायक क्षेत्रों में विदेशी पूंजी के प्रवेश के लिए दरवाजे खोले जा रहे हैं। इससे जनता बड़े पैमाने पर रोजगार से वंचित होकर गरीबी में धकेल दी जाएगी। इन सबके खिलाफ जनता हजारों, लाखों की संख्या में संघर्ष का रास्ता अख़्तियार कर रही है। सरकारों के क्रूर दमन के खिलाफ बगावत का परचम लहरा रही है। दुनिया भर के कई देशों में शासक वर्गों द्वारा आर्थिक संकट का बोझ लादे जाने के खिलाफ जनता विद्रोह कर रही है। इन संघर्षों का दमन करने तथा उन पर काबू पाने के लिए साम्राज्यवादी और दलाल शासक वर्ग कई पापड़ बेल रहे हैं। लेकिन साम्राज्यवाद का मुकाबला और उसके द्वारा लादे जा रहे संकट के बोझ से निपटना तभी संभव हो सकेगा जब इन सभी संघर्षों को अलग–अलग न चलाते हुए, सर्वहारा की अगुवाई में एक मजबूत व सांझा जन आंदोलन चलाया जाए। जिन देशों में सर्वहारा वर्ग की पार्टियां मजबूत हों, वहां पर उनकी अगुवाई में इन जन विद्रोहों को क्रांतिकारी संघर्षों में तब्दील करने की जरूरत है। भारत में भाकपा (माओवादी) ऐसे तमाम संघर्ष को एक सूत्र में बांधकर जनता को क्रांतिकारी संघर्षों में गोलबंद करने की कोशिश कर रही है। अंततः आर्थिक संकटों की समाप्ति तभी हो सकती है जब जनता सर्वहारा के नेतृत्व में शोषणकारी पूंजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त कर, नई जनवादी व्यवस्था और उसके बाद समाजवादी व्यवस्था को कायम कर लेगी।

**प्रश्न 2 –** इस परिस्थिति में पार्टी की ओर से विकल्प क्या है?

**का. आनंद –** भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां की तीन चौथाई आबादी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। इसके बावजूद, तथाकथित आजादी के बाद पिछले 65 सालों में कृषि क्षेत्र किस हद तक शासकों की उपेक्षा का शिकार रहा, इसकी चर्चा पहले ही हो चुकी है। कथित रूप से कृषि क्षेत्र को विकसित करने के नाम से सामने लाए गए भूमि सुधार, हरित क्रांति आदि से

जमींदारों और सम्पन्न वर्गों का ही फायदा हुआ जबकि आम किसानों को कुछ भी हासिल नहीं हुआ। पिछले दो दशकों से लागू साम्राज्यवाद–निर्देशित नई आर्थिक नीतियों के तहत 'विकास' के नाम पर अपनाई गई सेज, भारी उद्योगों और खदान परियोजनाओं ने गरीब किसानों को भी जमीनों से बेदखल कर दिया है। 1991 से इन दो दशकों के दौरान दो लाख से ज्यादा किसानों ने खुदकुशी कर ली।

देश की वस्तुस्थिति यह है कि साम्राज्यवादी और उनके सेवक दलाल नौकरशाह पूंजीपति शासक वर्ग देश की सम्पदाओं को लूटकर समृद्ध आदिवासी इलाकों से कच्चा माल का दोहन कर रहे हैं। इसके लिए निर्मित हो रहे चार–छह लेन की सड़कों, रेलवे लाइनों, परियोजनाओं और उद्योगों को 'विकास' के रूप में चित्रित कर अनर्गल प्रचार किया जा रहा है। इस 'विकास' ने देश के लाखों आदिवासियों और दलितों को विस्थापित कर दिया। इतने सालों की आजादी ने किसानों, आम लोगों और दलितों को आत्महत्या, गरीबी और विस्थापन ही दिया है।

यही कारण है कि भाकपा (माओवादी) इस परिस्थिति को बदलने की बात कर रही है। वह ऐसी नई जनवादी व्यवस्था के लिए लड़ रही है जिसमें तमाम जनता को रोटी, कपड़ा, मकान, आजादी और समानता हासिल हों। ऐसी व्यवस्था में ही स्वावलम्बन पर आधारित आर्थिक नीतियों पर अमल हो सकेगा जिससे जनता की भागीदारी के बल पर सच्चा विकास हासिल किया जा सकेगा। इस तरह की वैकल्पिक आर्थिक व्यवस्था के निर्माण में, प्राथमिक स्तर पर ही सही भाकपा (माओवादी) की अगुवाई में आज दण्डकारण्य की जनता जुटी हुई है। वहां की जनता आज आत्मनिर्भरता पर आधारित आर्थिक नीतियों को विशिष्ट तरीकों में लागू कर रही है। यह किसी एक दिन या चंद दिनों में संभव नहीं हुआ। तीन दशकों से जारी क्रांतिकारी आंदोलन इसकी पृष्ठभूमि में है। 1985 से 1995 के बीच दण्डकारण्य में चले तीखे वर्ग संघर्ष के फलस्वरूप साम्राज्यवादी, दलाल नौकरशाह पूंजीवादी व सामंती शोषण और उनके आर्थिक व राजनीतिक अंग ध्वस्त होकर उसके स्थान पर 1995 से नई राजसत्ता के अंग अस्तित्व में आने लगे। इन्हें क्रांतिकारी जन कमेटी या क्रांतिकारी जनताना सरकार के रूप में बुलाया जा रहा है। 'जोतने वालों को ही जमीन' के नारे के आधार पर चले तीखे वर्ग संघर्ष के फलस्वरूप दण्डकारण्य में लगभग तीन लाख एकड़ सरकारी वन भूमि पर जनता ने कब्जा किया। इससे दण्डकारण्य में अत्यधि

ाक किसानों को जमीनें मिल गईं। तीन दशकों से जारी कृषि क्रांति में भूमिहीन व गरीब किसानों द्वारा हासिल कामयाबियों में यह अहम है।

इन जमीनों को बचाकर उत्पादकता को बढ़ाकर उन्हें सुधारने का कार्यभार क्रांतिकारी जनताना सरकारों ने उठा लिया है। हालांकि प्राथमिक स्तर पर राजसत्ता को कायम किए बिना इस तरह के कार्यभारों को पूरा करना संभव नहीं है, इस बात को जनता ने समझ लिया। स्थानीय जनता द्वारा चुनी गई क्रांतिकारी जनताना सरकार की इकाइयां हजारों शत्रु–बलों की घेराबंदी के बीचोबीच 'क्रांतिकारी जन कमेटियों को सभी अधिकार' के नारे के साथ भूमि सुध ाार लागू करने की कोशिश कर रही हैं। इसी को पहली प्राथमिकता दे रही हैं।

महान नक्सलबाड़ी सशस्त्र संघर्ष की धारावाहिकता में आंध्रप्रदेश व बिहार में जबर्दस्त सामंतवाद–विरोधी संघर्ष उभरे थे। कृषि क्रांतिकारी कार्यक्रम के तहत जमींदारों की पट्टा जमीनों के साथ–साथ कई किस्म की सरकारी व वन भूमि को कब्जे में लेकर काश्त में लाया गया जोकि कई लाख एकड़ होंगी। कई इलाकों में जन राजसत्ता के अंगों को बुनियादी स्तर पर ही सही, स्थापित किया गया। नक्सलबाड़ी, आंध्रप्रदेश व बिहार के किसान संघर्षों को कुचलकर, जनता को क्रांतिकारी आंदोलन से दूर करने की नीयत से आदिवासियों के उद्धार के नाम पर लाया गया 1970 का भूमि हदबंदी कानून हो, आदिवासियों की जमीनों के हस्तांतरण को रोकने वाले कानून हों, 2006 का नया वन अधिकार कानून ही क्यों न हो, किसी भी सरकारी कानून ने आदिवासी किसानों का भला नहीं किया। ऐसे हालात में माओवादी एक ओर जनयुद्ध को संचालित करते हुए ही कृषि क्रांति के लक्ष्य के अंतर्गत क्रांतिकारी भूमि सुधार कार्यक्रमों को अपनाकर किसानों को सचेतन कर उनका हौसला बढ़ा रहे हैं।

दण्डकारण्य की क्रांतिकारी जनताना सरकार की जोन तैयारी कमेटी ने पहले 2011 में जमीन समतलीकरण कार्यक्रम चलाने का आह्वान किया था। इस आह्वान को पाकर दण्डकारण्य के किसान उत्साह के साथ आगे आए। आदिवासियों के कृषि के तरीकों में गुणात्मक बदलाव लाने के अंतर्गत जमीनों का समतलीकरण कर खेतों की मरम्मत करने की जरूरत को जनता ने महसूस किया। पानी के स्रोतों पर बीज बिखेरकर फसलें उगाने की पुरानी पद्धतियों में बदलाव लाए बिना उत्पादन को बढ़ाना संभव नहीं है, यह बात जनता ने समझ ली। इसीलिए भूमि समतलीकरण – खेती मरम्मत का अभियान चलाया गया। इसे जनताना सरकार के स्थापना दिवस पर, यानी भूमकाल दिवस (ब्रितानी

साम्राज्यवादियों के खिलाफ आदिवासी विद्रोह कर जनता ने 1910 में माड़िया राज्य की स्थापना की थी) के दिन 10 फरवरी को शुरू कर पूरे 18 दिनों तक चलाकर सफल बनाया गया।

तीन सप्ताह तक चले इस जन अभियान में कुल एक लाख 20 हजार से ज्यादा जनता ने भाग लेकर 30 लाख कार्य दिवस पूरा किया। इसके फलस्वरूप एक हजार से ज्यादा गरीब किसानों की जमीनों की मरम्मत पूरी हुई। इसके अलावा कई जगहों पर किसानों ने जनताना सरकार व गुरिल्लों की जरूरतों के लिए सामूहिक जमीनों में भी काम किया। किसानों की जमीनों को सिंचाई की सुविधा मुहैया करवाने के लिए कुल 50 से ज्यादा तालाबों और कुण्डों का निर्माण किया। कहीं–कहीं खेतों के घेरे बनाए गए। 136 बेघर किसानों को नए घर बनाकर दिए गए। इस अभियान के लिए जोन सरकार द्वारा आवंटित एक करोड़ 50 लाख रुपए में से एक तिहाई ही खर्च हो गई। चूंकि जनताना सरकार की मदों में बकाया राशि रद्द नहीं की जाती, इसलिए जनता ने इस धन को ऐसी जरूरतों के लिए दूसरी बार खर्च करने का निश्चय किया है। इस अभियान के परिणामस्वरूप जनता का रोजी–रोटी के लिए पड़ोसी राज्यों में जाना कुछ हद तक रुक गया। उस समय पुलिसिया हमलों का जनता द्वारा सामूहिक रूप से मुकाबला करना भी संभव हुआ।

जन कल्याण के नाम पर हजारों करोड़ रुपए का जन धन लूटकर पूंजीपतियों के लिए फायदेमंद कामों को ही 'विकास' के रूप में दिखाने वाले लुटेरे शासकों की छलपूर्ण व दिवालिया आर्थिक नीतियों और हर पैसे व हर श्रम घण्टे का सदुपयोग करते हुए दबी–कुचली जनता के वास्तविक विकास को व्यवहार की धरातल पर दिखाने वाली वैकल्पिक जन आर्थिक नीतियों में फर्क को हम यहां स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। इसलिए, सच्चाई यह है कि आज दण्डकारण्य में जनता द्वारा अपनी क्रांतिकारी जन सरकारों की अगुवाई में अपनाई जाने वाली आत्मनिर्भरतापूर्ण आर्थिक नीतियां ही इस देश और शोषित जनता के सामने मौजूद एक मात्र विकल्प हैं। हालांकि यहीं तक सीमित होने से यह पर्याप्त नहीं होगा। इस आर्थिक विकास को और आगे बढ़कर कृषि क्रांति पर आधारित औद्योगिक विकास का रूप ले लेना होगा।

वर्तमान शोषक व्यवस्था को यह डर है कि अगर विकास का यह वैकल्पिक नमूना आगे बढ़ता है तो उसके अस्तित्व के लिए खतरा होगा। इसलिए वह इसे प्राथमिक अवस्था में ही, पूर्ण विकास होने से पहले ही बंदूकों से, हिंसा से और

ग्रीनहंट रूपी सैनिक हमलों से कुचलने की कोशिश कर रही है। इसलिए इसे बचाकर, इसमें जान फूंककर, इसका विकास करना आज समूचे देशवासियों का फर्ज है।

**प्रश्न 3 –** माओवादी पार्टी के नेतृत्व में चलने वाले लालगढ़ संघर्ष ने जबर्दस्त प्रेरणा दी। क्या इसी तर्ज पर चल रहे नारायणपटना, नियमगिरी और सोमपेटा आदि संघर्षों के बारे में हमें बताएंगे?

**का. आनंद –** लालगढ़ संघर्ष साम्राज्यवाद, दलाल नौकरशाह पूंजीवाद और सामंतवाद के खिलाफ एक जन विद्रोह था। बाद में वहां पर जन राजसत्ता के अंगों के निर्माण से वह और भी उन्नत स्तर पर विकसित हो गया। नियमगिरी, नारायणपटना, सोमपेटा आदि संघर्ष लालगढ़ संघर्ष की धारावाहिकता में ही चल रहे हैं। इसमें जमीन का सवाल केन्द्र बिंदु के रूप में है। नारायणपटना में प्रधान समस्या यह है कि वहां पर गरीबों की जमीन कब्जा करने वाले जमींदारों से लड़कर किसान अपनी जमीनें वापस पाना चाहते हैं। शराबबंदी का संघर्ष भी इसके अंतर्गत चल रहा है। हाल के समय में जारी सामंतवाद विरोधी संघर्षों में मुख्य स्थान रखने वाले नारायणपटना संघर्ष को हम अतीत में कृषि क्रांति के अंतर्गत चलाए गए संघर्षों की धारावाहिकता के रूप में देख सकेंगे।

नियमगिरी संघर्ष बक्साइट खनन के खिलाफ चल रहा है। बाक्साइट खोद निकालने के लिए वहां के पहाड़ों, जंगलों, कुल मिलाकर समूचे पर्यावरण का विनाश करने की साजिश चल रही है वहां। इसके खिलाफ वहां के आदिवासी संघर्ष कर रहे हैं। लालगढ़ संघर्ष भी इसी तरह का है। ये साम्राज्यवाद, दलाल नौकरशाह पूंजी और सामंतवाद तीनों के खिलाफ चल रहे हैं। समूचे ओड़िशा को देखा जाए तो नारायणपटना और उसके बगल में मौजूद देवमाली के पहाड़ी क्षेत्र में बाक्साइट खनन के खिलाफ संघर्ष चल रहा है। वहां से सटे हुए आंध्रप्रदेश के विशाखा जिले के पूर्वी पर्वतमाला में अरकु और अन्य इलाकों में भी बक्साइट खनन के विरोध में जन संघर्ष चल रहे हैं। बाक्साइट के खनन से पूर्वी पर्वतमाला का प्राकृतिक सौंदर्य, पर्यावरण और किसानों की आजीविका खतरे में पड़ेंगे। यहां पर नाल्को कम्पनी के लिए बाक्सइट की खुदाई पहले से जारी है। इसके खिलाफ भी संघर्ष चल रहा है।

जहां तक सोमपेटा में चल रहे संघर्ष का सवाल है, यहां पर ए.वी.एस. नामक एक निजी कम्पनी किसानों से उपजाऊ जमीनें थर्मल बिजली संयंत्र के लिए छीन लेना चाहती है। अपनी अनमोल जमीनें बचाने के लिए जनता संघर्ष

कर रही है। अगर यहां पर थर्मल बिजली संयंत्र बन जाता है तो यहां के मछवारों और किसानों का जीवन, आजीविका और पर्यावरण खतरे में पड़ेंगे। लालगढ़, नियमगिरी, सोमपेटा, कलिंगनगर, पोस्को आदि सभी संघर्ष माओवादी पार्टी के नेतृत्व में चल रहे हैं। इसके अलावा भी कई संघर्ष चल रहे हैं। देश भर में देखा जाए तो विभिन्न पार्टियों और संगठनों की अगुवाई में जैतापुर और कूड़नकुलम में परमाणु बिजली संयंत्रों की स्थापना के खिलाफ संघर्ष चल रहे हैं। जरूरत है कि इन संघर्षों में माओवादी पार्टी इसमें सक्रिय रूप से भाग लेते हुए नेतृत्व करे और उन्हें लालगढ़ व नारायणपटना की तर्ज पर मजबूत जन संघर्षों में बदल दे। साम्राज्यवाद, दलाल नौकरशाह पूंजीवाद और सामंतवाद के खिलाफ जारी इन संघर्षों को सशस्त्र संघर्ष की ओर, वैकल्पिक संघर्षों की ओर, राजसत्ता की स्थापना की ओर मोड़ने की जरूरत है। लालगढ़ और नारायणपटना में यही हुआ। इन तमाम संघर्षों को सामंतवाद–विरोधी और साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्षों में संगठित करने की जरूरत है। देश में इस तरह की समस्याएं हर तरफ हैं जिनके खिलाफ संघर्ष जारी हैं। जरूरत इस बात की है कि माओवादी पार्टी इन सभी संघर्षों का नेतृत्व करे।

**प्रश्न 4** – तेलंगाना में पृथक राज्य के गठन के लिए तीखा संघर्ष चल रहा है। तेलंगाना में माओवादी पार्टी का मजबूत आधार है। पृथक तेलंगाना संघर्ष की पृष्ठभूमि क्या है? इस पर माओवादी पार्टी का रुख क्या है?

**का. आनंद** – किसी भी इलाके के संसाधनों और शिक्षा व रोजगार के अवसरों पर अधिकार स्थानीय लोगों को ही होना चाहिए जोकि सहज न्याय है। अगर इसके विपरीत किसी दूसरे इलाके के लोग आधिपत्य और शोषण चलाते हैं तो वहां की जनता अपने अधिकारों के लिए जरूर लड़ती है। आज के 'पृथक तेलंगाना' आंदोलन का आधार यही है। लेकिन यह संघर्ष आज का नहीं है। 1724 में हैदराबाद रियासत, जिसे आज तेलंगाना कहा जाता है, के गठन होने के बाद से असफजाही शासन में 'अफाकी' कहे जाने वाले गैर–स्थानीय लोगों ने शिक्षा, रोजगार और प्रशासन के क्षेत्रों में अपना दबदबा कायम किया था। इससे 'दक्खनी' बुलाए जाने वाले स्थानीय (मुल्की) लोगों में असंतोष और आक्रोश भड़क उठे थे। इससे आंदोलन उठ खड़े हुए थे। तबसे लेकर जनता के संघर्ष उस समय तक जारी थे जब तक कि 1919 में उस समय का निजाम 'मुल्की' नियमों को लागू नहीं करता।

15 अगस्त 1947 के सत्ता के हस्तांतरण के बाद स्वदेशी रियासतों के प्रति

ब्रितानियों द्वारा अपनाई गई नीति के मुताबिक निजाम नवाब ने भारत सरकार के साथ 29 नवम्बर 1947 को 'यथास्थिति' का समझौता कर लिया था। तब तक निजाम रियासत की जनता राष्ट्रीय आंदोलन, आंध्र महासभा और कम्युनिस्ट पार्टियों की स्फूर्तिभावना के साथ आंदोलन कर रही थी। 4 जुलाई 1946 में कड़वेण्डी गांव में दोड्डी कोमुरैया की शहादत के साथ जनता सशस्त्र हुई। जमीन, रोटी और मुक्ति के संघर्ष के रूप में चले तेलंगाना सशस्त्र संघर्ष की बदौलत जनता ने दस लाख एकड़ जमीन जब्त कर ली। तीन हजार गांवों में ग्राम राज्य कमेटियों का शासन कायम हुआ था। इस डर से कि कहीं तेलंगाना भारत का 'येनान' न बन जाए, नेहरू और पटेल ने 13 सितम्बर 1948 को 'आपरेशन पोलो' के नाम से षड़यंत्रपूर्ण तरीके से सैन्य हमला किया था। रज़ाकारों का भय दिखाकर तेलंगाना को यूनियन में मिला लिया गया। निजाम ने 17 सितम्बर की शाम तक आत्मसमर्पण किया था, जबकि यूनियन की सेनाओं ने 21 अक्टूबर 1951 तक कम्युनिस्टों और मुसलमानों का कत्लेआम किया। इसीलिए 17 सितम्बर को 'द्रोह दिन' के रूप में मनाया जाता है।

मद्रास राज्य से अलग होकर आंध्र राज्य बना था जिसमें तेलंगाना को मिलाने के लिए 'बड़े लोगों के समझौते' के नाम से एक साजिश की गई जिससे आंध्रप्रदेश का गठन संभव हो पाया। यहीं से बेअंत शोषण का रास्ता साफ हो गया। सीमांध्र क्षेत्र से आए लोगों ने तेलंगाना के गरीब किसानों की जमीनें सस्ते में हासिल कर लीं। पानी, कोष का आवंटन और नियुक्तियों में हुए अन्याय ने 1969 में 'पृथक राज्य' के लिए आंदोलन को प्रेरित किया।

श्रीकाकुलम के सशस्त्र संघर्ष को पाशविक तरीके से कुचलने वाले जलगम वेंगलराव ने ही फिर छात्र आंदोलन को कुचलने के लिए 369 लोगों की जानें लीं। मार्च 1971 में हुए चुनावों में इन खूनी बलिदानों के बल पर मर्रि चेन्नारेड्डी लोकसभा में 11 सीटें जीतकर सितम्बर के आते–आते कांग्रेस में शामिल हो गया। इतिहास में तेलंगाना फिर एक बार गद्दारी का शिकार हो गया।

जब–जब जनता ने पृथक राज्य के लिए आंदोलन किया तब–तब तेलंगाना पर कमेटियों की बाढ़ सी आती रही। 1955 का फज़ल अली कमिशन, 1956 का बड़े लोगों का समझौता, 1969 का अखिल पक्षीय समझौता, आठ सूत्र, 1973 के छह सूत्र, 1975 में राष्ट्रपति के आदेश, 1986 में 610 जी.ओ., 2004 में न्यूनतम साझा कार्यक्रम, राष्ट्रपति का भाषण, 2004 प्रणब कमेटी, 2005 गिरगलानी कमेटी, 2008 रोशैया कमेटी.... कई अन्य पार्टियों के प्रस्ताव और घोषणा–पत्र... इसके

अलावा 9 दिसम्बर 2009 को चिदम्बरम की घोषणा और उसके बाद श्रीकृष्ण कमेटी।

क्या किसी राज्य के गठन के लिए इतनी लम्बी कार्रवाई जरूरी है? क्या दुनिया के किसी जनवादी देश में ऐसा हुआ? क्या तेलंगाना कोई अलग देश मांग रहा है?

2000 में एनडीए सरकार ने जब तीन नए राज्यों का गठन किया था तब पृथक राज्य के लिए आंदोलनरत जनता में नई आशाएं जाग उठीं। वरंगल घोषणा के बाद जनसभा, सांझा मंच, छात्र और सांस्कृतिक संगठनों ने तेलंगाना आंदोलन को आगे बढ़ाया। बेल्लि ललिता की हत्या, गदर पर गोलीबारी, विध ाानसभा में यनमला के आदेश आदि ने यह स्पष्ट किया कि तेलंगाना के प्रति सीमांध्र के शासकों का रुख क्या है। किसानों की आत्महत्याओं, विकास के नाम से तेलंगाना में हो रही तबाही, चंद्रबाबू नाइडू का जनसंहारक शासन आदि से कब्रस्तान बन चुके तेलंगाना को बशीरबाग गोलीकाण्ड ने भड़का दिया। इस तरह के अनुकूल माहौल में के. चंद्रशेखरराव ने पृथक राज्य का नारा देकर अपना राजनीतिक 'तेलंगाना भवन' बना लिया। आंदोलन का निर्माता हुए बिना ही वो रातोंरात नेता बन गए। उनके लिए आंदोलन का मतलब चुनाव, इस्तीफे और लाबीइंग (खेमेबंदी) के अलावा कुछ नहीं है। वो तेलुगुदेशम के खिलाफ कांग्रेस के साथ और कांग्रेस के खिलाफ तेलुगुदेशम के साथ मोर्चा बनाकर तेलंगाना के लड़ाकू इतिहास को उपहास के पात्र बना रहे हैं।

आज तेलंगाना आंदोलन कई संघर्षों और कई चरणों से गुजरकर अब अंतिम चरण पर पहुंच चुका है। आज तेलंगाना की जनता के मन में पृथक राज्य के गठन के अलावा और कोई मुद्दा नहीं है। हर गांव, हर गली, हर घर, हर इंसान यह ऐलान कर रहा है कि तेलंगाना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। पृथक तेलंगाना के लिए जनता के अंदर इतनी एकता पहले कभी नहीं देखी गई। जनता के इस जायज अधिकार के साथ कोई भी धोखा करेगा वह आज तेलंगाना की जनता की नजरों में गद्दार ही है। तेलंगाना की जनता को अब साफ हो गया कि शोषक शासक वर्ग, दिवालिया राजनीतिक पार्टियां और नेता तेलंगाना की आकांक्षा के साथ किस तरह खिलवाड़ कर रहे हैं। वह दिन जरूर आएगा जब इन सबको इतिहास के कूड़ेदान में फेंक दिया जाए। तेलंगाना की जनता दशकों से अनमोल कुरबानियों के साथ लड़ रही है। आज तेलंगाना आंदोलन को ऐसे नेतृत्व की जरूरत है जो तमाम जनता को एकजुट कर सही दिशानिर्देश के साथ

चला सके। वो जनता के बीच से ही आएगा। इस तरह का नेतृत्व दे सकने वाली सर्वहारा पार्टी – भाकपा (माओवादी) आज तेलंगाना में मजबूत स्थिति में नहीं है, जो एक प्रतिकूल पहलू है। फिर भी आज पृथक तेलंगाना का आंदोलन इस स्तर पर चल रहा है तो जनता में मौजूद मजबूत आकांक्षा और उनकी संघर्षशील विरासत ही उसका कारण हैं। शासक वर्ग, दिवालिया राजनीतिक पार्टियां और नेता जी–तोड़ कोशिश कर रहे हैं कि इस तरह का नेतृत्व न बने और आंदोलन की बागडोर जनता के हाथों में न चले जाए। वे अपनी पूरी ताकत और सारा दिमाग तेलंगाना को रोकने में ही लगा रहे हैं। सकल जन हड़ताल के दौरान यह बात और ज्यादा साफ हो गई।

कांग्रेस का यह कहना है कि देने वाले और लाने वाले दोनों वही हैं। तेलुगुदेशम का दो आंखों वाला सिद्धांत है। सत्ता में रहकर तो भाजपा ने तेलंगाना का गठन नहीं किया था, लेकिन अब कह रही है कि अगर कांग्रेस संसद में विधेयक लाती है तो वह मजबूती से समर्थन करेगी। वाइएसआर कांग्रेस का नेता जगन कहता है कि इसका हल केन्द्र सरकार ही करेगी, उसका इससे कोई लेना–देना नहीं है। सबका लक्ष्य है कि अगर तेलंगाना बनता है तो उसका राजनीतिक फायदा उठाया जाए। इस पृष्ठभूमि में हर पार्टी आंदोलन को अपने लिए अनुकूल दिशा में मोड़ने की कोशिश कर रही है। चुनावी राजनीति को दरकिनार कर आंदोलन को जुझारू रूप से आगे ले जाने की बजाए ये तमाम दिवालिया पार्टियां इसे चुनावी दलदल में ले जाकर गुमराह करने की कोशिश कर रही हैं। तेलंगाना के मुद्दे को ऐन केन प्रकारेण 2014 के चुनावों तक खींचने के लिए ये सभी पार्टियां कोशिश कर रही हैं। इनमें से कोई भी पार्टी तेलंगाना की आकांक्षाओं के प्रति और पृथक राज्य हासिल करने के प्रति ईमानदार नहीं है। तेलंगाना हासिल करने के प्रति जनता ईमानदार और दृढ़ निश्चयी है, जबकि ये धोखेबाज इस कोशिश में हैं कि जनता को भ्रम में डालकर जहां तक हो सके इस मसले को चुनावी राजनीति के इर्दगिर्द ही घुमाकर अपना उल्लू सीधा किया जाए। इसके मुताबिक ही दावपेंच लगा रहे हैं। लेकिन इनके विलम्बकारी दावपेंचों को जनता जरूर परास्त करेगी।

पृथक तेलंगाना चुनावों, इस्तीफों और लाबीइंग के जरिए हासिल नहीं होगा। वह मजदूरों, किसानों, छात्रों, वकीलों, कर्मचारियों, बुद्धिजीवियों, कवियों, कलाकारों, दलितों, अल्पसंख्यकों, आदिवासियों, महिलाओं समेत सभी तबकों के व्यापक व साझे जन आंदोलन से ही हासिल होगा। इसके लिए जनता का

निचले स्तर से निर्माणात्मक रूप से संगठित होना जरूरी है। इस तरह का संगठित निर्माण शासक पार्टियों को गवारा नहीं है। इसके अभाव में ही खुद को तेलंगाना का चैम्पियन बताने वाली टीआरएस (तेलंगाना राष्ट्र समिति) और अन्य राजनीतिक पार्टियां सीमांध्र के शासक वर्गों के हाथों बिक गईं और अभूतपूर्व स्तर पर चलने वाले सकल जन हड़ताल पर पानी फेरकर जनता को हताश कर पाई हैं। इस तरह के व्यापक व सांझे जन आंदोलन को निचले स्तर से निर्मित करने के लिए भाकपा (माओवादी) भरसक कोशिश करेगी। चाहे कितनी भी मुश्किलें आएं जनता लड़ने के लिए तैयार है। पृथक तेलंगाना की मांग जनता की जायज मांग है जो शोषण व आधिपत्य के खिलाफ उठी है। इस प्रकार की किसी भी जायज मांग का भाकपा (माओवादी) समर्थन करती है। उसे हासिल करने के लिए जनता के साथ मिलकर संघर्ष में भाग लेती है।

साथ ही, माओवादी पार्टी का यह दृष्टिकोण नहीं है कि जनता जिस तेलंगाना को हासिल करने वाली है वह सामंतों और पूंजीपतियों का तेलंगाना हो। हमारी पार्टी का दृष्टिकोण यह है कि उस तेलंगाना में सभी तबकों को उनके प्रतिनिधित्व के हिसाब से भागीदारी मिले और वह तेलंगाना आत्मनिर्भरता पर आधारित 'जनवादी तेलंगाना' हो। हालांकि पृथक तेलंगाना हासिल करने मात्र से शोषित जनता का जीवन पूरी तरह नहीं बदलेगा। यह एक आंशिक व सुधारवादी मांग ही है। जनता को उनके प्रतिनिधित्व के हिसाब से अवसर मिलेंगे। वह भी तभी संभव होगा जब 'जनवादी तेलंगाना' हासिल होगा। वरना यहां भी वही हाल होगा जो देश के दूसरे राज्यों में हुआ। शोषित जनता को नई जनवादी व्यवस्था में ही पूरा न्याय मिलेगा जिसमें जमीन, रोटी व मुक्ति की गारंटी हो। इसलिए पृथक तेलंगाना जैसे जन आंदोलनों का समर्थन कर और उनमें भाग लेकर हमारी पार्टी जनता को सचेतनशील करती है और उन्हें नई जनवादी क्रांतिकारी आंदोलन में गोलबंद करने की कोशिश करती है जो इस शोषणकारी व्यवस्था को उखाड़ फेंक दे।

**प्रश्न 5 –** पश्चिम बंगाल में सत्ता में आने से पहले ममता बनर्जी ने माओवादी पार्टी के पक्ष में बात की थी। सत्ता में आने के बाद वह कह रही हैं कि माओवादी पार्टी पर पुलिस कार्रवाई होगी। इस पर आप क्या कहेंगे?

**का. आनंद –** पश्चिम बंगाल में सत्ता पर काबिज होने से पहले ममता बनर्जी ने कामरेड आजाद की फर्जी मुठभेड़ पर न्यायिक जांच और बंगाल से संयुक्त सशस्त्र बलों को वापस लेने की मांग उठाई थी जो माओवादी पार्टी के

पक्ष में था। सत्ता में आने के बाद उसने प्रधान रूप से यह स्पष्ट किया कि केन्द्र सरकार की जो नीति होगी उसकी भी वही नीति है। उसके बाद संयुक्त बलों को वापस नहीं लिए जाने की घोषणा की। माओवादियों को हिंसा छोड़ने की अपील कर एक माह तक संघर्षविराम की बात की। हालांकि संघर्षविराम के नियम–कायदों के बारे में दोनों पक्षों के बीच समझौता जैसा कुछ भी नहीं हुआ था। संघर्षविराम सिर्फ ममता बनर्जी की बातों तक सीमित था। बलों को वापस नहीं लिया गया। जमीनी स्तर पर हमलों और कार्रवाइयों को बंद नहीं किया गया। इसी दरमियान इन हमलों में सहयोग दे रहे तृणमूल कांग्रेस पार्टी के कुछ जनविरोधियों पर हमारी पार्टी की स्थानीय कमेटी ने कार्रवाई की। इस दौरान हुए हमलों और कार्रवाइयों पर हमारी पार्टी की पश्चिम बंगाल इकाई ने बयान भी जारी किए। उसके बाद ममता बनर्जी ने अल्टिमेटम जारी किया कि हथियार छोड़कर वार्ता के लिए आगे आएं। उसके तुरंत बाद हमारी पार्टी के पोलिटब्यूरो सदस्य कामरेड मल्लोजुला कोटेश्वरराव उर्फ किशनजी की क्रूरतापूर्वक हत्या की। इसे देश भर के जनवादियों ने सोनिया, मनमोहन, चिदम्बरम और ममता गिरोह द्वारा फर्जी मुठभेड़ में की गई हत्या करार दिया। लेकिन चिदम्बरम और ममता बनर्जी ने इसे असली मुठभेड़ बताकर खुद का बचाव किया। दूसरी ओर सीपीएम नेता सीताराम एचूरी ने और भी घटिया तरीके से बयान दिया। क्या यह सब माओवादी पार्टी को पूर्व नियोजित तरीके से खत्म करने की साजिश का सबूत नहीं है?

ममता बनर्जी साम्राज्यवादियों और दलाल नौकरशाह पूंजीपतियों की दलाल है। सत्ता में आते ही उसने जो घोषणा की कि विदेशी पूंजी को सभी सुविधाएं दी जाएंगी, इसी से उसकी असलियत को समझा जा सकता है। सत्ता में आने से पहले माओवादी पार्टी की पक्षधर होने जैसी बातें करना और जनता को भ्रम में डालकर वोट बटोरना ममता बनर्जी को जरूरी था। शासक वर्गों के ऐसे वफादार दलाल चुनावों के बाद वही करते हैं जो स्वाभाविक है। कामरेड कोटेश्वरराव की निर्मम हत्या के साथ ममता बनर्जी का असली चेहरा स्पष्ट हो गया। हमारी पार्टी ने अपने अनुभव में ऐसे कई शासकों को देख लिया है। सत्ता में आने से पहले एक और आने के बाद जनविरोधी के रूप में पेश आना इनका स्वभाव है। बंगाल में पहले के सीपीएम शासन और ममता के शासन में कोई फर्क नहीं है। ममता शोषण के दरवाजे खोलने में दो कदम आगे ही रहेगी। हालांकि वह कुछ समय तक जनता को भ्रम में रख सकती है। भविष्य में ऐसे कई जन दुश्मनों को जनता देखेगी। हत्यारों के मुंह से सद्भावना के मंत्र फूट रहे हैं।

इसीलिए हमारी पार्टी यह आग्रह करती है कि जनता जनदुश्मनों के प्रति सावध ाान रहे।

**प्रश्न 6 –** महाराष्ट्र की जनता को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

**का. आनंद –** महाराष्ट्र की जनता साम्राज्यवादी, दलाल नौकरशाही पूंजीपति और सामंती शोषण का शिकार है। जैतापुर परमाणु बिजली संयंत्र से लेकर कई सेज और परियोजनाएं साम्राज्यवादी शोषण के चंद ताजा उदाहरण हैं। साथ ही, महाराष्ट्र में किसानों की आत्महत्याएं ज्यादा हो रही हैं। ग्रामीण इलाकों में सामंती शोषण बेहद ज्यादा है। गरीब जनता के श्रम का निर्मम शोषण किया जा रहा है। इसलिए यहां हमारी पार्टी के नेतृत्व में साम्राज्यवाद, दलाल नौकरशाह पूंजीपतियों और सामंतवाद के खिलाफ संघर्ष छेड़ने के लिए बेहद अनुकूल परिस्थिति है। तमाम जनता को क्रांतिकारी आंदोलन में संगठित करने की जरूरत है।

महाराष्ट्र की जनता का जुझारू संघर्षों का महान इतिहास रहा है। ब्रितानी शासन के खिलाफ दूसरा पानिपट युद्ध, मराठा देशभक्तों के संघर्ष, मुम्बई के मजदूरों के संघर्ष.... जंगे आजादी से लेकर दत्ता सामंत के नेतृत्व में चले मजदूर संघर्षों तक मजदूरों ने कई संघर्ष किए। कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में लाल परचम उठाकर किसान–मजदूरों के कई संघर्ष हुए थे। गोदावरी वरुलेकर की अगुवाई में नासिक में सशस्त्र किसान संघर्ष, उसके बाद दलाल नौकरशाह पूंजीपति वर्ग के खिलाफ निरंतर संघर्ष जारी रखने का इतिहास है। वर्तमान इतिहास हमारी पार्टी के नेतृत्व में मुम्बई, चंद्रपुर और नागपुर में मजदूर संघर्ष, नासिक के किसान संघर्ष, गढ़चिरोली व गोंदिया जिलों में आदिवासी किसानों के संघर्षों का है। खैरलांजी के दलितों का संघर्ष और दलितों की अस्मिता के लिए संघर्ष जारी है। दलितों के संघर्षों की महत्वपूर्ण भूमिका है। हमारी पार्टी को दलितों के पक्ष में खड़े होकर उनकी अस्मिता के लिए जारी संघर्षों का समर्थन करना चाहिए। खासकर पिछड़े जंगली और मैदानी इलाकों में सशस्त्र संघर्ष को और ज्यादा विकसित करते हुए, शहरी मजदूर वर्ग को गोलबंद करते हुए किसान–मजदूरों के संघर्षों के साथ क्रांतिकारी आंदोलन को मजबूत बनाने की जरूरत है।

महाराष्ट्र के राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस, एनसीपी के शरद पवार की शक्कर लाबी और शिवसेना–भाजपा गठबंधन का दबदबा चला आ रहा है। खासकर इन शासक वर्गों के खिलाफ शोषित जनता के संघर्षों का निशाना होना चाहिए। कई

दलितवादी संसदीय पार्टियां दलितों को संसदीय राजनीति में खींचते हुए उन्हें शोषण के खिलाफ और राजसत्ता पाने के संघर्ष से दूर कर रही हैं। महाराष्ट्र में अण्णा हजारे जैसे गांधीवादियों और गांधीवादी सिद्धांतों का प्रभाव शोषित व मध्यम वर्गीय जनता पर है। ये ढोंगी जनवाद पर भ्रम फैलाकर शोषण के खिलाफ जुझारू राजनीतिक संघर्षों की ओर जाने से रोकते हुए रक्षा वाल्व की तरह काम कर रहे हैं। इसके स्वभाव का जनता में व्यापक रूप से पर्दाफाश करने की जरूरत है। महाराष्ट्र की जनता को सुधारवाद, गांधीवाद और संसदीय पार्टियों के प्रभाव से बाहर आना होगा। महाराष्ट्र में साम्राज्यवाद, दलाल नौकरशाह पूंजीवाद और सामंतवाद के खिलाफ जारी तमाम संघर्षों के जरिए जनता को संगठित होने तथा हमारी पार्टी के नेतृत्व में जारी भारत की नई जनवादी क्रांति के साथ आत्मसात होने की जरूरत है। सशस्त्र क्रांति के जरिए ही महाराष्ट्र की जनता की मुक्ति संभव होगी।